International Journal of Applied Research 2019; 5(4): 354-355

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(4): 354-355
www.allresearchjournal.com
Received: 17-02-2019
Accepted: 18-03-2019

डॉ. कमलेश
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत
जीवन चानन महिला महाविद्यालय,
असन्ध करनाल, हरियाणा, भारत

Correspondence
डॉ. कमलेश
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत
जीवन चानन महिला महाविद्यालय,
असन्ध करनाल, हरियाणा, भारत

संस्कृत प्राकृत का एक मानकीकृत रूप है या नहीं?

डॉ. कमलेश

प्रस्तावना

संस्कृत भाषा विश्व की समस्त परिष्कृत भाषाओं में प्राचीनतम है। हमारे राष्ट्र भारत की यह एक अनुपमेय अमूल्य निधि है। संस्कृत भाषा भारतीयों की प्राणभूत भाषा है। भारतीय मनीषा का समस्त चिन्तन, मनन, गंवेषण तथा लौकिक–अलौकिक सभी अनुभूति इसी संस्कृत भाषा में समाहित है। यह सभी भाषाओं की जननी मानी जाती है। कुछ विद्वान् संस्कृत को प्राकृत भाषा की जननी मानते हैं। उनका कहना है कि प्राकृत एक साधारण बोलचाल की ग्रामीण भाषा है और संस्कृत शुद्ध, परिमार्जित एवं साहित्यिक भाषा है। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान् प्राकृत को ही संस्कृत की जननी मानते हैं, किन्तु दोनों में कौन–सा पक्ष श्रेष्ठ है यह निर्णय करना बहुत कठिन है, तथापि कुछ तथ्य नीचे दिए जाते हैं।

जार्ज ग्रियर्सन हार्वले ने प्राकृत को तीन भागों में विभाजित किया है। प्रथम प्राकृत वह है जिससे वैदिक भाषा का विकास हुआ है और जिसकी प्रतिनिधि भाषा आधुनिक संस्कृत है। द्वितीय प्राकृत पालि के रूप में बौद्ध साहित्य के अंतर्गत विद्यमान है, जिसका स्वरूप प्राकृत के नाटकों एवं व्याकरणों में मिलता है। तीसरी प्राकृत अपभ्रंश के रूप में विद्यमान है, जिससे हिन्दी का विकास हुआ है, किन्तु जार्ज ग्रियर्सन का यह मत प्राकृत के यथार्थ स्वरूप को प्रस्तुत नहीं करता है।

कुछ विद्वान् "प्रकृत्या स्वभावेन सिद्धं प्राकृतम्; ततश्च वैयाकरणै; साधितं संस्कृतम्" इस व्युत्पत्ति के अनुसार स्वभाव से सिद्ध भाषा को प्राकृत और वैयाकरणों द्वारा शुद्ध की हुई भाषा को संस्कृत कहते हैं। अतः संस्कृत प्राकृत की जननी नहीं, बल्कि प्राकृत से ही संस्कृत भाषा की उत्पत्ति है।

किन्तु विद्वानों द्वारा यह मत मान्य न हो सका; क्योंकि उनका कहना है कि कौन और कैसा स्वभाव? जिससे प्राकृत बना, यदि जनसमूह को प्राकृत माना जाएं तो दैवी वाक्–व्यावकीर्णियम् इस कथन से विरोध होगा और यदि परमेश्वर का स्वभाव माना जाए तो विरूपता होगी, क्योंकि अग्नि कभी शीतल नहीं होगी और सभी को परमेश्वरकृत मानने में गौरव भी बढ़ेगा।

कुछ विद्वान् प्राकृत को वेदमूलक मानते हैं, क्योंकि लिंग, वचन और विभक्ति में दोनों में साम्य देखा जाता है, जैसे– अम्हे–अस्मे। किन्तु यह मत भी ठीक नहीं प्रतीत होता है क्योंकि यदि इसे वेदमूलक एवं संस्कृत से प्राचीन भाषा मानते हैं तो पाणिनीय व्याकरण की अपूर्णता होगी; क्योंकि पाणिनीय व्याकरण में प्राकृत शब्दों का विवेचन नहीं है और पाणिनि ने वैदिक शब्दों की व्याकृति तो दिखायी है, किन्तु प्राकृत शब्दों की नहीं। इसके अतिरिक्त लिंग, वचन और विभक्ति के साम्य में भी कोई दृढ़ प्रमाण नहीं मिलता, क्योंकि फादर (Father), डाटर (Daughter) आदि शब्दों का पितृ, दुहितृ आदि से साम्य होने पर भी पितृ, दुहितृ आदि को प्रकृति नहीं मानते।

इस प्रकार व्युत्पत्ति द्वारा निष्पन्न अर्थ ही युक्तिसंगत जान पड़ता है क्योंकि इस मत के समर्थन में अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं।

क) **हेमचन्द्रः प्रकृतिः** संस्कृतम्, तत्र भवं, तत आगतें वा प्राकृतम्।
ख) **गीतगोविन्देः** संस्कृतात्प्राकृतम् श्रेष्ठम्, ततोऽपभ्रंशभाषणम्।
ग) **शाकुन्तलेः** संस्कृतात्प्राकृतं श्रेष्ठं ततोऽपभ्रंशभाषणम्।।

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि संस्कृत से प्राकृत भाषा की उत्पत्ति हुई है और प्राकृत से अपभ्रंश भाषा की उत्पत्ति हुई। अतः संस्कृत प्राकृत की जननी है और प्राकृत अपभ्रंश की।

प्राकृत भाषा का सर्वप्रथम ज्ञान हमें अशोक के शिलोलेखों से होता है। उस समय प्राकृत की तीन बोलियों का अस्तित्व था–

क) पूर्वी प्राकृतः यह अशोक के राज्य में व्यवहृत होती थी। इसमें 'ऋ' के स्थान पर इ या उ बोला जाता था। जैसे– 'कृत' के स्थान पर 'कित'।

ख) उत्तरी पश्चिमी प्राकृतः इसमें प्राचीन रूप विद्यमान है। इसमें 'ऋ' के स्थान पर 'र' का प्रयोग होता था, जैसे – 'मृग' के स्थान पर 'मिरग'।

ग) पश्चिमी प्राकृतः इसमें 'ऋ' के स्थान पर 'अ' का प्रयोग मिलता है। जैसे– 'मृग' के स्थान पर 'मगो'।

इन बोलियों की विशेष जानकारी अश्वघोष के काव्यों के होती है। अश्वघोष के नाटकों में अर्धमागधी, प्राचीन मागधी, प्राचीन शौरसेनी आदि प्राकृतों का उल्लेख मिलता है। गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' पैशाची भाषा में लिखी गई है।

कुछ विद्वानों का मत है कि सभी नाटक पहले प्राकृत में थे। जब जनता संस्कृत भाषा को समझने लगी तब नाटकों में संस्कृत का प्रयोग होने लगा है। किन्तु डॉ॰ कीथ इससे सहमत नहीं है। उनका कहना है कि नाटक प्रबंध काव्यों के कथानक लेकर लिखे गये हैं। जब महाकाव्य संस्कृत में था तो नाटक प्राकृत में क्यों लिखे जायेंगे? इसके अतिरिक्त भास का एक नाटक संस्कृत मे है।

जार्ज ग्रियर्सन का कथन है कि कुछ विद्वान् रामायण और महाभारत को भी पहले प्राकृत में लिखा हुआ मानते हैं किन्तु इन ग्रंथों को देखने से ज्ञात होता है कि ये किसी अन्य भाषा के रूपान्तर नहीं है।

ऐतिहासिक आधार

पाणिनि की अष्टाध्यायी से ज्ञात होता है कि वे महाभारत से परिचित थे। इसके अतिरिक्त चरकसंहिता से ज्ञात होता है कि उस समय वाद–विवाद संस्कृत में होता था, प्राकृत में नहीं। वात्स्यायन के कामसूत्र में सभ्य पुरुषके लिए संस्कृत भाषा का ज्ञान आवश्यक बताया गया है।

हूवेनत्सांग सप्तम् शताब्दी में भारत आया था, उसने लिखा है कि उस समय बौद्ध लोग संस्कृत बोलते थे।

जैन साहित्य मे सभ्य पुरुषों के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक बताया गया है और जैन सिद्धर्षि ने तो यहाँ तक लिखा है कि उनकी संस्कृत इतनी सरल थी कि प्राकृत समझने वाले भी अच्छी तरह समझ लेते थे।

उपर्युक्त आधारों पर ज्ञात होता है कि संस्कृत भाषा प्राकृत से बहुत पहले प्रचलित थी और संस्कृत प्राकृत भाषा की जननी है।

शास्त्रीय आधार

शतपथ ब्राह्मण के देखने से ज्ञात होता है कि केवल व्याकरण, ज्योतिष, छंद आदि ही संस्कृत में नहीं थे, बल्कि सर्वजनविद्या, जादू–टोने, धनुर्विद्या, शिल्पकला, गायनकला आदि भी संस्कृत में लिखे जाते थे।

पतंजलि ने महाभाष्य में लिखा है कि 'व्याकरण शब्दों का निर्माण नहीं करता, बल्कि व्यवहार में आने वाले प्रचलित शब्दों की व्युत्पत्ति बताता है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय संस्कृत बोल–चाल की भाषा थी।

किन्तु भाषागत अनिवार्य परिवर्तनों के फलस्वरूप संस्कृत शनैः शनैः केवल शिष्ट वर्ग की भाषा बनती गई और जनसामान्य उसके परिवर्तित रूप प्राकृत और अपभ्रंश आदि का प्रयोग करने लगे।

संस्कृत के नाट्यों के आचार्यों ने भाषा सम्बन्धी जो विधान प्रस्तुत किया है, वह भी इस मत का ही समर्थक है। नाट्यगत भाषा विधान के अंतर्गत उत्तम पात्र संस्कृत का प्रयोग करते हैं, किन्तु उसका पात्र विभिन्न प्रकार की प्राकृत बोलते हैं, फिर भी सभी पात्र संस्कृत एवं प्राकृत दोनों को ही भली–भांति समझते हैं। प्रो॰ मैक्डॉलन ने कहा है कि एक समय भारतीय जनता संस्कृत भाषा में ही अपने भावों को प्रकट करती थी। क्रमशः भाषागत परिवर्तनों से प्राकृत का उदय एवं प्रसार होने से संस्कृत का व्यवहार बोलचाल के माध्यम के रूप में कम होता गया। सामान्य अशिक्षित जनसमुदाय संस्कृत का विकृत रूप प्रयुक्त करता था, शिष्ट शिक्षित वर्ग संस्कृत का। कुछ दिनों तक दोनों रूपों को लोग एक ही भाषा की बोलियों के रूप मानते रहे थे, किन्तु विकृति का प्राचुर्य होने पर प्राकृत तथा संस्कृत में स्पष्ट भेद कर दिया गया। किन्तु दोनों भाषाओं का परस्पर सौमनस्य और सहयोग बना रहा।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संस्कृत भाषा का प्राचीनतम रूप वैदिक मंत्रों में सुरक्षित है उसी से लौकिक संस्कृत का उदय हुआ और तदन्तर प्राकृत का जन्म हुआ। यह प्राकृत ही विकसित होकर पालि का रूप धारण कर लिया। एक प्रकार से पालि प्राकृत का साहित्यिक रूप है और उसका मूलस्रोत शौरसेनी प्राकृत है। आगे चलकर संस्कृत और प्राकृत से एक तीसरी भाषा का उदय हुआ जो अपभ्रंश के नाम से प्रचलित हुई।

ग्रंथ नामानुक्रमणिका

1. डॉ॰ प्रीति प्रभा गोयल, संस्कृत साहित्य का इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, संस्करण 2016।
2. आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन, वाराणसी, संस्करण 2009।
3. डॉ॰ उमाशंकर शर्मा ऋषि, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा भारतीय अकादमी, वाराणसी, संस्करण 2017।
4. प्रो॰ पारसनाथ द्विवेद्वी, वैदिक साहित्य का इतिहास, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, संस्करण 2017।
5. डॉ॰ राजमणि शर्मा, हिन्दी भाषा इतिहास और स्वरूप, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2004।